स्त्री का हृदय

(१)

द्रौपदी हमारे गाँव में सबसे सुन्दर लड़की थी। बाल्यावस्था में मैं और वह वर्षों साथ खेले हैं। कैसे अद्भुत दिन थे, जीवन एक सुखमय फुलवाड़ी था, जिसमें शिशिर के विषैले झोंकों का प्रवेश तक न था। द्रौपदी उस फुलवाड़ी की फूल थी। उसे देख कर किसी को कल्पना भी न हो सकती थी कि वह गाँव की लड़की होगी। रूप-रंग से वह राजकुमारी मालूम होती थी; साफ़ निखरा हुआ रंग; बड़ी-बड़ी आँखें, गोल चन्द्रमा का-सा मुख और उस पर उसकी मधुर वाणी सोने में सुगन्ध थी। सारा दिन मैना की तरह बातें करती थी। उनको सुन कर राह चलते बटोही भी ठहर जाते थे। और, गाँववालों के लिए तो वह खिलौना थी। एक दिन हमारे गाँव में एक धनाढ्य पुरुष घूमते हुए आ निकले। उनके साथ लड़कियों की पल्टन थी। उनकी तड़क-भड़क और सौन्दर्य देख कर गाँव के लोग उनके पास जाते हुए डरते थे। परन्तु द्रौपदी उनमें इतनी जल्दी घुल-मिल गई जैसे वर्षों की जान-पहचान हो। उन लड़कियों से गाँव में कुछ दिन चहल-पहल रही। परन्तु द्रौपदी के सामने आकर उनकी सुन्दरता क्षीण हो जाती थी, जिस तरह सूरज के सामने तारे फीके पड़ जाते हैं।

मेरी उमर उन दिनों बहुत थोड़ी थी, परन्तु द्रौपदी में मुझे एक मोहनी-

शक्ति प्रतीत होती थी। मैं उसके बिना रह नहीं सकता था। बचपन में किसी को खिलौने पसंद होते हैं, किसी को चित्र, परन्तु मेरा मन उनमें से किसी को भी नहीं चाहता था। मुझे द्रौपदी और केवल द्रौपदी का ध्यान था। यदि बाल्यावस्था में प्रेम आसक्तिदोष न समझा जाये, तो मुझे यह कहने में तनिक भी झिझक नहीं कि मुझे उससे अनिर्वचनीय प्रेम था। मैं उसके मुख को घण्टों देखता रहता था, और समझता था कि यह अधिकार केवल मुझी को प्राप्त है। इस विचार से मेरा हृदय चाँदनी रात की नाईं खिल जाता था। मनुष्य बाल्यावस्था में सैकड़ों भूलें करता है, यह भी उनमें से एक थी।

(२)

कई वर्ष बीत गये। मैंने मिडल की परीक्षा पास कर ली और हाई स्कूल में प्रविष्ट होने के लिए घर से चला। उस समय मेरा मुख उदास था, हृदय दुखी। रह-रह कर सोचता था, कि क्या अब द्रौपदी का प्यारा-प्यारा मुखड़ा दिखाई न देगा? क्या उसकी मधुर वाणी सुनाई न देगी? मैं सदा उसके साथ खेलता था। उसे कहानियाँ सुनाता था, चित्र दिखाता था। वह मेरी प्रतीक्षा में अपने द्वार पर खड़ी रहती थी। उसे देख कर मैं झूमने लगता था, और यदि वह दिखाई न देती तो मेरी आँखों में संसार अंधकारमय हो जाता था। मुझे कभी ख़याल भी न था कि मैं उसके बिना रह सकूँगा। पर अब क्या होगा? मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। सोचा, मेरे साथ कई लड़के पढ़ते थे जो फ़ेल हो गये हैं; कदाचित् मैं भी फ़ेल हो जाता तो यह दिन न देखना पड़ता। उस समय मुझे उनके दुर्भाग्य पर डाह होता था। दुःख और सुख हृदय की अवस्था पर निर्भर है।

मैं स्कूल में भर्ती हुआ, परन्तु आठों पहर उदास रहने लगा। बोर्डिङ्गहाउस का प्रबन्ध अत्युत्तम था। दूसरे विद्यार्थी इस प्रकार उछलते फिरते थे जैसे स्वतन्त्र पक्षी फूलों की टहनियों पर खेलते हैं। परन्तु वह स्थान मेरे लिए जेल से कम न था। मैं चाहता था, कि यदि पंख मिलें तो उड़ कर अपने गाँव पहुँच जाऊँ और द्रौपदी को हृदय से लगा लूँ। परन्तु यह कैसे हो सकता था? द्रौपदी थोड़ी-सी हिन्दी जानती थी। एक दिन विचार आया कि क्यों न मैं उसे एक पत्र लिख

कर विरहानल को ठण्ढा कर लूँ। पानी ने एक रास्ता बन्द पा कर दूसरा मार्ग ग्रहण किया। मैंने पत्र लिखा और उसमें कलेजा निकाल कर रख दिया। ऐसी लगन से कोई विद्यार्थी वार्षिक परीक्षा में पर्चा भी न लिखता होगा। यह मेरे जीवन की परीक्षा थी। कुछ दिन पा कर मेरे पिता का पत्र आया। द्रौपदी का पत्र उनके पास पहुँच गया था। मेरा सिर चकराने लगा; मैं फेल हो गया था। उस रात मेरी आँखों में नींद न थी। इस प्रकार तड़पता था जैसे मछली गरम रेत पर तड़पती है। कभी सोचता, पिता को झाड़ लिख भेजूँ। कभी विचार होता, चल कर पाँवों पर सिर रख दूँ, फिर भी पिता हैं, कलेजा पत्थर का कैसे करेंगे। कभी सोचता, आत्महत्या कर लूँ, इस जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है। फिर विचार आता द्रौपदी को तो मुझसे प्रेम है। यदि उसके पास संदेशा भेज दूँ तो वह निस्सन्देह घर-बार छोड़ कर मेरे साथ चल खड़ी होगी। परन्तु अन्त में सब विचार नदी के बुद्बुदों के समान अस्त-व्यस्त हो गये, जो जितनी जल्दी बनते हैं उतनी ही जल्दी टूट जाते हैं। मैं रो-धो कर चुप हो रहा, और प्रार्थना करने लगा कि परमात्मा, मेरी मनोकामना पूरी कर। निराश्रयों का इसके सिवा और आश्रय ही कौन-सा है?

दो वर्ष का अल्पकाल, जिसे प्रेम की विकलता ने दो सौ वर्ष बना दिया था, समाप्त हुआ, और मैं एन्ट्रैंस की परीक्षा देकर घर चला। इस समय हृदय में सैकड़ों विचारों की बाढ़ आ रही थी। द्रौपदी को देखने के चाव में उमंगों के आकाश पर उड़ा चला जाता था; परन्तु गाँव आने न पाता था। मैं बार-बार झुँझला उठता था, कि गाँव दूर-दूर क्यों होता जा रहा है। परन्तु वहाँ पहुँच कर हृदय बैठ गया। जिस प्रकार मंज़िलें मार-मार कर यात्री स्टेशन पर पहुँचे, और उसे मालूम हो कि गाड़ी निकल गई है। उस समय उसके हृदय पर क्या कुछ बीतती है। भाग्य को कोसता है और कलेजा मल-मल कर रह जाता है। यही अवस्था मेरी थी। घर पहुँच कर सबसे पहला समाचार यह सुना, कि द्रौपदी का ब्याह हो गया है। मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। क्या-क्या उमंगें थीं, क्या क्या कामनायें? सब पर पानी फिर गया। अब मेरे चारों ओर अंधकार ही अंधकार था।

(२)

मैं नहीं कह सकता, इस चोट को मैंने किस प्रकार सहन किया। परन्तु इतना स्मरण है कि मेरे सिर पर कई मास तक एक प्रकार का पागलपन सवार रहा। मुझे भ्रान्ति होने लगी कि मेरा मस्तिष्क बिगड़ जायगा। स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया था, चित्त सदैव उदास रहने लगा। किसी काम में जी न लगता था। रात को नींद न आती थी। बैठे-बैठे चौंक उठता था। सुहृद्-मित्र कहते, कैसे मूर्ख हो, अब यदि एक स्त्री नहीं मिली तो क्या प्राण दे दोगे। मैं उनके कथन की सचाई को अनुभव करता था, परन्तु मन वश में न था। उस पर उनके कथन का भी कुछ प्रभाव न होता था।

परन्तु द्रौपदी की दशा मुझसे विपरीत थी। विवाह के पश्चात् उसने मुझे भुला दिया था, और सच्चे हृदय से अपने पति की सेवा में मग्न हो गई थी। वह उसकी पूजा करती थी, और उसी को अपने जीवन का सर्वस्व समझती थी। उसका विवाह पास के एक गाँव में हुआ था। लड़का बहुत ही सुन्दर और पढ़ा-लिखा था। इतना ही नहीं, उसे भी द्रौपदी से प्रेम था। वह मेरा प्रतिद्वन्दी न होता, तो मैं उसकी प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर देता। और अब भी उसका विरोध करने को जी न चाहता था। उसके गुणों ने मेरा मुँह बन्द कर दिया था। मैंने दूसरा ब्याह स्वीकार न किया और मन को दूसरी ओर लगाये रखने के लिए साहुकारा आरम्भ कर दिया।

एक दिन दोपहर के समय मैं अपनी दूकान के सामने चारपाई डाले हिसाब-किताब कर रहा था, कि सामने से कोई लड़की जाती हुई दिखाई दी। मेरी आँख हठात् उसकी ओर उठ गई। कलेजा धड़कने लगा; यह द्रौपदी थी। परन्तु उसकी अवस्था कैसी बदल गई थी। उसके मुख पर वह लाली न थी, नेत्रों में वह तेज न था, होठों पर वह मुस्कुराहट न थी। निराशा की मूर्ति इससे अधिक करुणामय किसी चित्रकार ने भी न बनाई होगी। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। कभी वह वसन्त की माधवी छवि थी, पर अब शिशिर की मूर्ति। मैं सोचने लगा, इसका कारण क्या हो सकता है? संध्या के समय उसके भाई से पूछा, "प्यारेलाल! तुम्हारी बहन का क्या हाल है?"

प्यारेलाल ने रुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया "अब तुमसे क्या छिपाऊँ, शम्भुनाथ ने दूसरा ब्याह कर लिया है।"

मैं यह सुन कर उछल पड़ा, "क्या कहा, दूसरा ब्याह?"

"हाँ, दूसरा ब्याह।"

मैंने उसे चारपाई पर स्थान देते हुए सहानुभूति के भाव से पूछा, "शम्भुनाथ की आँखों पर यह पर्दा कैसे पड़ गया?"

प्यारेलाल की आँखों में आँसू भर आये। उन्हें पोंछते हुए बोला "पेशावर के एक धनाढ्य सेठ ने उसे अपनी इकलौती बेटी ब्याह दी है। परन्तु शर्त यह है कि द्रौपदी को छोड़ दे। शम्भुनाथ ने यह देख कर कि ससुर की मृत्यु पर उसकी संपत्ति का वही अधिकारी होगा, यह शर्त स्वीकार कर ली है।"

मैंने ठण्ढी साँस भरी और उत्तर दिया, "इस सेठ ने तुम लोगों से कबका बैर निकाला?"

"राम जाने, हमने तो कभी किसी का बुरा नहीं किया।"

"तो अब द्रौपदी का क्या हाल है?"

"जबसे आई है, बराबर रो रही है। उसका मुख पहले की अपेक्षा आधा भी नहीं रहा।"

"स्त्री के लिए इससे अधिक विपत्ति क्या हो सकती है?"

"परमात्मा यह दिन बैरी को भी न दिखाये।"

मुँह से तो यह शब्द कह दिये, परन्तु मन में ऐसा प्रसन्न था, जैसे कोई रण मार लिया हो। प्यारेलाल के चले जाने पर मेरे मुख पर एक दानवी चमक थी। सोचा कि अब उसे पता लगेगा कि किसी का दिल तोड़ा जाये तो क्या होता है। रूप-रङ्ग पर रीझ गई थी। परन्तु यह पता न था कि रस में विष भरा है। अब आयु-भर बैठी रोती रहेगी।

(४)

परन्तु कुछ समय पा कर मेरी सहानुभूति द्रौपदी के साथ बढ़ने लगी। अब वह रोती नहीं थी। समय उसके घावों के लिए मरहम बन गया था। प्रायः कहा करती कि जो विपत्ति मुझ पर पड़ी है, जब उसे सहन ही करना है, तो हँस कर

क्यों न किया जाय। रोने से यह बोझ हलका तो नहीं हो सकता। वह दिन-रात घर के काम काज में लगी रहती थी। दोपहर को थोड़ा-सा अवकाश मिलता तो रामायण ले बैठती, और गाँव की लड़कियों को पढ़ कर सुनाती। उसकी वाणी में जादू था, शब्दों में रस। पहले-पहल लड़कियों की संख्या थोड़ी थी, परन्तु धीरे-धीरे वह संख्या बढ़ने लगी। और अन्त में तो इतनी भीड़ होने लगी कि लगभग गाँव की सारी स्त्रियाँ एकट्ठी होने लगीं। यदि किसी दिन द्रौपदी कथा न कर सकती तो उनका दिन आनन्द से न व्यतीत होता था, जैसे भाँग पीनेवाले को भाँग न मिली हो। द्रौपदी अब देवी दिखाई देती थी। उसके मुखमण्डल पर शान्ति की झलक थी, नेत्रों में भक्ति का रङ्ग। उसे देख कर गाँव के लोग श्रद्धा से सिर झुका लेते थे। और मैं तो ब्रह्मानन्द में लीन हो जाता था। अब उसका प्रेम सांसारिक वासनाओं से शून्य होता जाता था, जैसे सोना अग्नि में पड़ कर कुन्दन हो जाता है। उसे देख कर लोग शम्भुनाथ के दुर्भाग्य पर शोक प्रकट करते थे। कहते, कैसा मूर्ख है जो इसको छोड़ कर धन के पीछे भाग रहा है। ऐसी देवियाँ तो स्वयं लक्ष्मी का रूप हैं। परन्तु अब द्रौपदी को इसकी परवा न थी। वह अपने ब्याह को मानों भूल गई थी। संसार से विमुख होकर परलोक सँवारने की चिन्ता में थी।

उसके इन गुणों ने उसके लिए मेरी सहानुभूति बढ़ा दी थी। एक दिन वह था, जब मैं उसके दुर्भाग्य पर प्रसन्न हुआ था। परन्तु अब उसे दुःख में देख कर मेरे आँसू निकल आते थे।

(५)

एक दिन प्रातः काल मैं कुएँ पर नहा रहा था कि एक नवयुवक मेरे पास से गुज़रा। उसका चेहरा परिचित-सा जान पड़ता था। मैंने अच्छी तरह देखा, तो चौंक पड़ा। वह शम्भुनाथ था। परन्तु क्या ठाठ-बाट था, सिर पर बनारसी साफ़ा, हाथों में अँगूठियाँ, कँधों पर क़ीमती चादर। उसे देख कर ऐसा जान पड़ता था, जैसे कोई राजकुमार है। मेरे हृदय पर साँप लोट गया। मैंने बिना किसी प्रकार की भूमिका के कहा "तुम ही शम्भुनाथ हो क्या?"

शम्भुनाथ इस प्रश्न के लिए तैयार न था, आश्चर्य से बोला, "जी हाँ, क्या आज्ञा है ?"

मैंने घृणा से उसकी ओर देखा, और उत्तर दिया, "कभी तुम्हें द्रौपदी भी याद आती है या नहीं ?"

डाक्टर के मुख से मृत्यु का समाचार सुन कर जो दशा रोगी की होती है, वही दशा शम्भुनाथ की इस प्रश्न से हुई। मुख पर मुर्दनी छा गई। कुछ देर तो वह चुप रहा, फिर धीरे से बोला, "तुम्हें इस प्रश्न का क्या अधिकार है ?"

मेरे तन में आग-सी लग गई। मैंने चिल्ला कर कहा, "मुझे इसका अधिकार है। तुम्हें एक स्त्री के जीवन को नष्ट करने का अधिकार है, परन्तु मुझे इस विषय में एक प्रश्न पूछने का भी अधिकार नहीं ?"

शम्भुनाथ के माथे पर बल पड़ गये, "तुमने शराब तो नहीं पी ली है ? बहकी-बहकी बातें करते हो।"

"कंगाल का बेटा राज-गद्दी पर बैठ गया। अब उसकी बुद्धि क्यों कर ठीक रह सकती है।"

"मैं तुम्हारा नशा उतार दूँगा।"

"बात करते लज्जा नहीं आती ? आदमी होते तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरते। तुमने वह पाप किया है, जिसका प्रायश्चित्त नहीं।"

शम्भुनाथ अब न सह सका। उसने आगे बढ़ कर मेरी गर्दन पकड़ ली और कनपटी पर दो मुक्के मारे। मैं बालकपन ही से व्यायाम करता था। मेरी शारीरिक अवस्था बहुत अच्छी थी। परन्तु शम्भुनाथ के मुक्के मुक्के नहीं थे, हथौड़े थे। मैं मूर्च्छित हो गया।

जब मुझे सुधि आई, तो मेरे सिर पर पट्टी बँधी थी, और मैं चारपाई पर लेटा था। घटना को स्मरण करके मेरी आँखों से आग के चिंगारे निकलने लगे। मैंने उसी अवस्था में चिल्ला कर कहा, "मैं उसे इसका मज़ा चखा कर छोड़ूँगा।"

कुछ दिन के बाद मैं नीरोग हो गया। उस समय मेरी प्रतिज्ञा गाँव में दावानल की नाईं फैल चुकी थी। लोग मेरे स्वभाव को भली भाँति जानते थे। वह जानते थे कि जब मैं कोई प्रतिज्ञा कर लेता हूँ, तो फिर

उसे पूरा किये बिना नहीं रहता। इसलिए किसी को साहस न होता था कि मुझे समझाने का प्रयत्न करे। मैं तैयारियों में लीन हो गया। इस जोश से किसी सेनापति ने शत्रु के देश पर चढ़ाई न की होगी। मैं एक छुरा लेकर शम्भुनाथ के गाँव की ओर चला। कलेजा धड़क रहा था, तथापि मैं आगे बढ़ता गया, और उसके मकान पर जा पहुँचा। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। सारा गाँव अचेत पड़ा सो रहा था। मैंने शम्भुनाथ के दरवाजे पर धीरे से हाथ मारा। कुछ क्षण के पश्चात् दरवाज़ा खुल गया। मैं लड़खड़ाते पैरों से आगे बढ़ा। दरवाज़ा खोलने-वाले ने कोई शोर न किया। उसकी जोभ को मेरे रुपये ने खरीद लिया था। मैं पैंतरा बदलता हुआ उस कमरे में पहुँचा जहाँ शम्भुनाथ सो रहा था। मेरा संकल्प डोल गया। सहसा विचार आया, यही मनुष्य है जिसने मेरा और मेरी प्यारी द्रौपदी का जीवन नष्ट कर दिया है, अन्यथा हम इस समय इस दशा में न होते। गिरती हुई दीवार थम गई। मैंने छुरे की धार को देखा। मन को पक्का किया, हाथ उठाया, और शम्भुनाथ की छाती पर चढ़ बैठा। शम्भुनाथ की आँखें खुल गईं, मृत्यु उसके सामने खड़ी थी। उसने भर्राए हुए स्वर से कहा "परमात्मा के लिए यह न करो।"

मेरे क्रोध के ईंधन पर तेल पड़ गया। मैंने दाँत पीस कर कहा "अब किसी को बुलाना हो तो बुला लो।"

"ओह! परमात्मा के लिए मुझे न मारो।"

इन शब्दों में करुणा थी, परन्तु मेरा हृदय न पसीजा। मेरे सम्मुख केवल एक विचार था कि इसने दो जीवन नष्ट किए हैं। मेरा हृदय बहुत कोमल है, परन्तु वह इस समय रक्त-पिपासु भेड़िया बन रहा था। मैंने उसकी मिन्नतों पर ध्यान न दिया, और हाथ ऊँचा किया। शम्भुनाथ ने डर से आँखें बन्द कर लीं। मेरा हाथ चलने को था कि एकाएक किसी ने छुरे को पीछे से खींच लिया।। मैं घबरा कर शम्भुनाथ की छाती से उतरा और भयभीत होकर बोला "कौन?"

"द्रौपदी।"

मैं अवाक् रह गया। मुझे पहले विश्वास न हुआ कि मैं जाग रहा हूँ। किसे कल्पना हो सकती है कि अँधेरी रात में एक स्त्री इतनी दूर चल कर अपनी जान जोखों में डाल कर उस आदमी को बचाने का साहस करेगी, जिसने बिना

किसी अपराध के उसके जीवन के सम्पूर्ण सुख नष्ट कर दिये हों। मैं अपने आपको भूल गया। संसार में प्रतिकार-पिपासुओं की कमी नहीं, दुष्ट स्वार्थियों की कमी नहीं। परन्तु ऐसे लोग कितने हैं, जो अपने साथ बुराई करनेवालों के साथ भलाई पर उद्यत हो सकते हैं। मैंने झुक कर द्रौपदी के पैरों को हाथ लगाया और कहा "देवी! तू धन्य है।"

(६)

चालीस वर्ष बीत गये। यौवन के दुर्ग में बुढ़ापा आ पहुँचा। परन्तु, द्रौपदी के नियम में अन्तर न था। वह अब भी उसी प्रकार प्रातःकाल माला फेरती थी, दोपहर को रामायण की कथा करती थी। उसकी कमर झुक गई थी। दृष्टि क्षीण हो रही थी। प्रायः दिन भर घर ही में पड़ी रहती थी। इस आयु में स्त्रियाँ घरवालों के लिये बोझ हो जाती हैं। परन्तु द्रौपदी की यह दशा न थी। उसकी आत्मा ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली थी। उसका सम्मान गाँव के बच्चे बच्चे के हृदय में था।

सावन के दिन थे। नदी-नालों में बाढ़ आई हुई थी। मैं किसी आवश्यक काम से शम्भुनाथ के गाँव में चला गया था। वहाँ उसकी दशा देखी, तो संसार की क्षण-भंगुरता आँखों के सामने फिर गई। अब न उसके मकान थे, न कार-व्यवहार। जो कभी रुपयों में खेलता था, अब वह कौड़ी कौड़ी के लिए तरसता था। और इतना ही नहीं, उसकी स्त्री और श्वसुर भी मर चुके थे। अब वह था, और उसका छोटा बच्चा, जैसे तूफ़ान में किसी ने नौका पर भारी पत्थर रख दिये हों। वह दिन भी स्मरण रहेंगे, जब शम्भुनाथ इस छोटे-से बालक को कंधों पर उठाये फिरता था। इस समय उसके मुख पर कैसी दीनता थी, नेत्रों में कैसी उदासी। मेरे कलेजे पर बरछियाँ चल जाती थीं। कभी मुझे उससे द्वेष था, उस समय वह सुखी था, परन्तु मैं दुखी। मगर अब वह भी नष्ट हो चुका था। दोनों एक ही बाण के घायल थे, एक ही रोग के रोगी। मुझे उससे सहानुभूति हो गई। अंततः उसके दुःखमय जीवन का अंतिम दिन आ पहुँचा।

प्रातःकाल था। वह एक अँधेरी कोठरी में तड़प रहा था। परन्तु प्राण न निकलते थे। वह बार बार अपने छोटे बच्चे की ओर देखता था, और काँप काँप-

कर रह जाता था। कदाचित् सोचता था, कि मेरे पीछे इसको कौन सँभालेगा ?

एकाएक दरवाज़ा खुला, और बूढ़ी द्रौपदी लाठी लिये कमरे के अन्दर आई। उस समय उसके कपड़े पानी में भीग रहे थे, शरीर मिट्टी में लथपथ था। परन्तु उसे इसकी परवा न थी। वह सीधी शम्भुनाथ के पास गई, और उस पर झुक कर बोली "क्यों ? राम का नाम लो।"

आवाज़ प्यार से भरी हुई थी। शम्भुनाथ ने रोकर कहा "मेरा बच्चा !"

द्रौपदी ने बच्चे को उठा कर छाती से लगा लिया, और उत्तर दिया "यह मेरे प्राणों के साथ रहेगा।"

"हूँ।"

"चिन्ता न करो। राम राम कहो, राम राम।"

दूसरे क्षण में शम्भुनाथ के प्राण निकल गये। द्रौपदी की आँखों में आँसू भर आये। इतने में द्रौपदी का भाई प्यारेलाल क्रोध से काँपता हुआ कमरे में आया, और बोला "मैं तुमसे अलग हो जाऊँगा, नहीं तो इस बच्चे को फेंक दो।"

परन्तु द्रौपदी ने उसे गले से लगा लिया, और कहा "यह नहीं होगा।"

'तो यही अंतिम निश्चय है ?"

"अंतिम।"

"अच्छा मेरे घर में न आना।"

"न आऊँगी। मेरा परमात्मा है। जिसने इस बच्चे के लिए मुझे भेजा है, वह मेरे लिए भी किसी को भेज देगा। और यदि न भेजेगा, तो न सही। मैं भूखों मरना स्वीकार करूँगी, परन्तु उनकी आत्मा को दुःख न पहुँचाऊँगी।"

मेरी आँखें खुल गईं। स्त्री का हृदय इतना ऊँचा, इतना उदार हो सकता है, इसकी आशा न थी। स्त्री युवावस्था में अपने पति के लिए प्राण तक निछावर कर देती है। उस समय उसका रक्त गर्म होता है। परन्तु बुढ़ापे में पति की अंतिम चितवन को शान्ति की अवस्था में देखने के लिए अपने आपको जोखों में डाल देना कठिन है। मैं रोता हुआ आगे बढ़ा और बोला—

"देवी ! चिन्ता न कर, तेरे और तेरे बच्चे के लिए मेरे पास बहुत कुछ है।"

उसने मेरी ओर देखा। परन्तु मुँह से कुछ न कहा। मेरी आँखों में उसका सम्मान ऐसा कभी न था।